खेदु मोहतन और अन्य

बनाम

बिहार राज्य

(Khedu Mohton and Others

Vs.

The State of Bihar)

(17 अगस्त, 1970)

(न्या० के० एस० हेगडे और आई० डी० दुआ)

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5)—धारा 417(3)—दोषमुक्ति के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील—धारा 431—अपीलों का उपशमन—यदि उच्च न्यायालय दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई कोई अपील एक बार ग्रहण कर लेता है तो उसका यह कर्तव्य हो जाता है कि वह परिवादी की मृत्यु हो जाने पर भी गुणागुण के आधार पर अपील का विनिश्चय करे।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5)—धारा 417 और 423 —दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपीलों में अपील न्यायालय की शक्तियां—जब तक प्रथम अपील न्यायालय का यह निष्कर्ष कि अभियुक्त दोषी नहीं थे, प्रत्यक्ष रूप से गलत या विधि के गलत अर्थान्वयन पर आधारित न हो तब तक उच्च न्यायालय को उस निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

अपीलार्थियों को परिवादी की धान की फसल बेईमानी से काटने और हटाने के लिए अभियोजित किया गया था। घटना के आठ दिन के पश्चात् परिवाद फाइल किया गया था। विचारण न्यायालय ने उन्हें दोषसिद्ध किया। अपील न्यायालय ने उन्हें इन आधारों पर दोषमुक्त कर दिया—(1) कि अभियोजन साक्षी अविश्वसनीय थे, (2) कि परिवाद फाइल करने में अत्यधिक बिलम्ब किया गया था जिसके लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया था, और

(3) उस पुलिस निरीक्षक की परीक्षा नहीं की गई थी जिसके सम्बन्ध में यह अभिकथित किया गया था कि वह घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी था। परिवादी ने उच्च न्यायालय में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 417(3) के अधीन अपील फाइल की। इस अपील के लम्बित रहने के दौरान परिवादी की मृत्यु हो गई। उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति को अपास्त कर दिया और अपीलार्थियों को दोषसिद्ध कर दिया। अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय के इस आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की। अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 431 में दाण्डिक अपीलों के उपशमन के प्रश्न से सम्बन्धित उपबंध किया गया है और उस धारा के अनुसार धारा 417 के अधीन की गई किसी अपील का उपशमन केवल अभियुक्त की मृत्यु हो जाने पर ही होगा अन्यथा नहीं। इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा, दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई, कोई अपील एक बार ग्रहण कर लिए जाने के पश्चात् उसका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह परिवादी की मृत्यु हो जाने पर भी गुणागुण के आधार पर उस अपील का विनिश्चय करे। (पैरा 7 और 8)

जब तक प्रथम अपील न्यायालय का यह निष्कर्ष कि अभियुक्त दोषी नहीं थे, प्रत्यक्ष रूप से गलत या विधि के गलत अर्थान्वयन पर आधारित न हो तब तक उच्च न्यायालय को उस निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने में अनिच्छुक रहना चाहिए। यदि अभिलेख पर के साक्ष्य के आधार पर दो युक्तियुक्त निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं तो अभियुक्त की दोषमुक्ति का समर्थन करने वाले मत को मान्यता देनी चाहिए। (पैरा 3)

प्रस्तुत मामले में अभियोजन साक्षी स्पष्ट रूप से हितबद्ध साक्षी थे क्योंकि वे अभियुक्तों के शत्रु थे और परिवादी द्वारा परिवाद फाइल करने में हुए विलंब और पुलिस निरीक्षक की परीक्षा न किए जाने की बाबत दिए गए स्पष्टीकरण मिथ्या थे इसलिए उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप करके भूल की है। (पैरा 4 और 5)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1925] ए० आई० आर० 1925 इलाहाबाद 620 :
निहाल अहमद बनाम **रामजी**
(Nehal Ahmad *Vs.* Ramji) 7

उलट दिया गया निर्णय

[1958] ए० आई० आर० 1958 मद्रास, 624 :
थोठन और एक अन्य बनाम मुरुगन और अन्य
(Thothan and Another *Vs.* Murugan and Others). 7

दाण्डिक अपीली अधिकारिता : 1967 की दाण्डिक अपील संख्या 162.

1965 की दाण्डिक अपील संख्या 40 में पटना उच्च न्यायालय के तारीख 3 मई, 1967 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाज़त लेकर की गई अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री ई० सी० अग्रवाल

प्रत्यर्थी की ओर से श्री बी० पी० झा

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति के० एस० हेगडे ने दिया ।

न्यायाधिपति हेगडे—

विशेष इजाज़त लेकर की गई यह अपील अपीलार्थियों की दोषमुक्ति को अपास्त करने वाले और भारतीय दण्ड संहिता की धारा 379/149 और साथ ही भारतीय दण्ड संहिता की धारा 143 के अधीन उनको दोषसिद्ध करने वाले पटना उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के विनिश्चय के विरुद्ध की गई है ।

2. अपीलार्थियों को आरा के मुंसिफ मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग के समक्ष ग्राम इब्राहिम नगर, जिला शाहाबाद के खाता संख्या 82 से संबंधित प्लाट संख्या 340 और 346 से धान की फसल बेईमानी से काटने और हटाने के लिए अभियोजित किया गया था । परिवादी का पक्षकथन यह है कि वह भूमि उसकी थी और अपीलार्थियों ने 19 नवम्बर, 1961 को विधि-विरुद्धतया उस संपत्ति में अतिचार करके चावल की फसल काट ली । अपीलार्थियों ने इस आरोप के प्रति दोषी न होने का अभिवाक् किया । विद्वान् विचारण मजिस्ट्रेट ने अपीलार्थियों को दोषी ठहराया और उन्हें दोषसिद्ध किया जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है । अपील में शाहाबाद के विद्वान्, जिला न्यायाधीश ने अपीलार्थियों को दोषमुक्त कर दिया । उसने अभियोजन के पक्षकथन पर विश्वास न करने के तीन विभिन्न कारण दिए । प्रथमतः वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि वे साक्षी जिन्होंने घटना के संबंध में साक्ष्य दिया था, सभी हितबद्ध साक्षी हैं और उनके परिसाक्ष्य पर

1970(8) eILR(PAT) SC 1

विश्वास करना निरापद नहीं है। द्वितीयतः वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि परिवाद फाइल करने में अत्यधिक विलम्ब हुआ था और प्रश्नगत विलम्ब के संबंध में अभियोजन पक्ष ने कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया और यह परिस्थिति अभियोजन के पक्षकथन के प्रति संदेह उत्पन्न करती है। अंतिम रूप से उसने यह अभिनिर्धारित किया कि उस पुलिस निरीक्षक की परीक्षा न करना जिसके संबंध में यह कहा गया था कि घटना के समय वह घटनास्थल पर आया था और उसने अपीलार्थियों में से कुछ व्यक्तियों को फसल काटते हुए देखा था, अभियोजन के पक्षकथन पर और भी संदेह उत्पन्न करता है। उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय से असहमत होते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि परिवाद फाइल करने में कोई विलम्ब नहीं किया गया था और न ही पुलिस निरीक्षक की परीक्षा न किया जाना कोई ऐसी परिस्थिति थी जो कि अभियोजन पक्ष के विरुद्ध जाती हो। उसने प्रथम अपील न्यायालय के इस निष्कर्ष पर विचार नहीं किया कि अभियोजन साक्षी 1 से 4 के साक्ष्य पर विश्वास करना निरापद नहीं है क्योंकि वे हितबद्ध साक्षी थे।

3. यह सच है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 417 के अधीन अपीलों में अभिलेख पर के साक्ष्य पर विचार करते हुए उच्च न्यायालय की शक्तियां उतनी ही विस्तृत हैं जितनी कि दोषसिद्धि के विरुद्ध अपीलों में उसकी शक्तियां हैं किन्तु साथ ही उस न्यायालय को अभियुक्त व्यक्तियों की निर्दोषिता की उस उपधारणा को ध्यान में रखना चाहिए जो उनकी दोषमुक्ति से कमजोर नहीं होती है। उसे यह तथ्य भी ध्यान में रखना चाहिए कि अपील न्यायाधीश का यह निष्कर्ष था कि वे दोषी नहीं थे। जब तक उसके द्वारा निकाले गए निष्कर्ष प्रत्यक्ष रूप से गलत न हों या विधि के गलत अर्थान्वयन पर आधारित न हों या कि उसके विनिश्चय के परिणामस्वरूप घोर अन्याय होने की संभावना न हो तब तक उच्च न्यायालय को उस निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने में अनिच्छुक रहना चाहिए। यदि अभिलेख पर के साक्ष्य के आधार पर दो युक्तियुक्त निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं तो अभियुक्त की दोषमुक्ति का समर्थन करने वाले मत को मान्यता देनी चाहिए। यह तथ्य कि उच्च न्यायालय अभिलेख पर के साक्ष्य के सम्बन्ध में भिन्न मत अपनाने के लिए प्रवृत्त है, दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

4. विद्वान् अपील न्यायाधीश का यह निष्कर्ष था कि अभियोजन साक्षी 1 से 4 हितबद्ध साक्षी हैं और उनके परिसाक्ष्य पर विश्वास करना निरापद नहीं है। साक्ष्य में यह सिद्ध किया गया है कि अभियोजन साक्षी 1 से 3 हितबद्ध साक्षी हैं। वे अपीलार्थियों के शत्रु हैं। मामले के इस पहलू पर उच्च न्यायालय ने बिल्कुल कोई विचार नहीं किया है।

5. यह कहा गया है कि यह घटना 19 नवम्बर, 1961 को घटी थी किन्तु इसकी बाबत परिवाद 27 नवम्बर, 1961 को फाइल किया गया था। इस अत्यधिक विलम्ब के सम्बन्ध में परिवादी द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण यह था कि उसने घटना के दिन ही पुलिस के समक्ष घटना के सम्बन्ध में सूचना दी थी; वह इस प्रत्याशा में था कि पुलिस अन्वेषण करेगी; चूंकि पुलिस ने अन्वेषण प्रारम्भ नहीं किया इसलिए उसने 27 नवम्बर, 1 1 को परिवाद फाइल किया। प्रथम अपील न्यायालय ने इस स्पष्टीकरण को अस्वीकार कर दिया। परिवादी द्वारा फाइल किए गए परिवाद के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि उसे न तो समनित किया गया था और न ही साबित किया गया था। ऐसे किसी परिवाद का कोई समाधानप्रद सबूत न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया। यदि धारा 154 के अधीन कोई परिवाद फाइल किया जाता तो उसे रजिस्टर में दर्ज किया गया होता और धारा 173 के अधीन अंतिम रिपोर्ट पेश की जाती। उन में से किसी भी दस्तावेज को समनित नहीं किया गया, साबित तो बिल्कुल ही नहीं किया गया। अत्यंत विस्मयजनक रूप से, उच्च न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश ने यह कहा कि यदि विद्वान् सेशन न्यायाधीश मजिस्ट्रेट की डायरी देखता तो उसे परिवादी द्वारा फाइल किए गए परिवाद का निर्देश मिल जाता। इस न्यायालय में हमने राज्य के काउन्सेल से मूल अभिलेख देखने के लिए और हमें यह सूचना देने के लिए अनुरोध किया कि क्या परिवादी द्वारा फाइल किए गए परिवाद का कोई निर्देश है। अभिलेखों की परीक्षा करने के पश्चात् उसने हमसे यह कहा कि ऐसा कोई निर्देश नहीं है। हम नहीं जानते कि विद्वान न्यायाधीश ने कैसे यह धारणा बना ली थी कि पुलिस को दी गई सूचना के सम्बन्ध में किसी अभिलेख में कोई निर्देश था। वास्तव में इस न्यायालय में राज्य के काउंसेल ने हमसे यह कहा कि बात यह हुई थी कि घटना के पूर्व ऐसा प्रतीत होता है कि परिवादी ने पुलिस के समक्ष यह उल्लेख करते हुए एक आवेदन फाइल किया गया था कि शान्ति भंग होने की आशंका है। इस प्रकार के मामले में परिवाद फाइल करने में लगभग 8 दिन का यह विलंब अभियोजन के पक्षकथन पर काफी संदेह पैदा करता है। विलंब का समाधानप्रद रूप में स्पष्टीकरण देना अभियोजन का कर्त्तव्य था। ऐसा करने में अभियोजन का असफल रहना निसंदेह एक ऐसी परिस्थिति है जो काफी महत्वपूर्ण है।

6. परिवादी के अनुसार जब अपीलार्थी फसल काट रहे थे तो उस समय पुलिस निरीक्षक वहां आया था और उसने कुछ अपीलार्थियों को फसल काटते हुए देखा था। यदि ऐसी बात थी तो पुलिस निरीक्षक अत्यंत महत्वपूर्ण साक्षी होता। उसका साक्ष्य अभियुक्तों का दोष विनिश्चित करने में उपयोगी होता। वह एक

1970(8) eILR(PAT) SC 1

अहितबद्ध व्यक्ति है। उसकी परीक्षा न किए जाने के सम्बन्ध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। अत्यंत आश्चर्यजनक रूप से उच्च न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश ने यह राय व्यक्त की कि निरीक्षक की परीक्षा करने का कोई प्रयोजन नहीं था जब कि वह उसको दिए गए परिवाद का अन्वेषण करने में असफल रहा था। जैसा कि पहले देखा जा चुका है कि वह अभिकथित परिवाद काल्पनिक प्रतीत होता है। इसलिए यह अनुमान लगाना अनुचित है कि पुलिस निरीक्षक कर्त्तव्य की उपेक्षा करने का दोषी है।

7. हमारे उपर्युक्त निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए हमारे लिए अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री ई० सी० अग्रवाल द्वारा विधि के प्रश्न पर दी गई दलील पर विचार करना अनावश्यक है। चूंकि उस सम्बन्ध में दलील दी गई है इसलिए हम उस पर विचार करेंगे। उच्च न्यायालय के समक्ष की गई अपील दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 417 की उपधारा (3) के अधीन विशेष इजाजत लेने के पश्चात् की गई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि अपील के लंबित रहने के दौरान ही परिवादी की मृत्यु हो गई। उच्च न्यायालय के समक्ष यह दलील दी गई और वही दलील हमारे समक्ष भी दोहराई गई कि परिवादी की मृत्यु हो जाने के कारण अपील उपशमित हो गई थी। उच्च न्यायालय ने इस दलील को अस्वीकार कर दिया था। उस दलील के समर्थन में अपीलार्थी के काउंसेल ने **निहाल अहमद** बनाम **रामजी**[1] में इलाहाबाद उच्च न्यायालय और **थोठन और एक अन्य** बनाम **मुरुगन और अन्य**[2] में मद्रास उच्च न्यायालय के विनिश्चयों का अवलंब लिया था। प्रथम विनिश्चय उस प्रस्तुत मामले के तथ्यों को लागू नहीं होता है। वह दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 476 (ख) के अधीन अपील थी। यह सच है कि मद्रास वाला विनिश्चय दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 417(3) के अधीन अपील में किया गया था। हमारी राय में मद्रास उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह समझने में भूल की थी कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय के विनिश्चय से उसके इस निष्कर्ष को समर्थन मिलता है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 417(3) के अधीन फाइल की गई किसी अपील का परिवादी की मृत्यु हो जाने पर उपशमन हो जाता है। दाण्डिक अपील के उपशमन के प्रश्न के सम्बन्ध में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 431 में उपबंध किया गया है। वह धारा इस प्रकार है—

> "धारा 411-क की उपधारा (2) या धारा 417 के अधीन हर अपील का उपशमन अभियुक्त की मृत्यु पर अंतिम रूप से हो जाएगा और

---

1 ए० आई० आर० 1925 इलाहाबाद 620.

2 ए० आई० आर० 1958 मद्रास 624.

1970(8) eILR(PAT) SC 1

(जुर्माने के दण्डादेश की अपील के सिवाय) इस अध्याय के अधीन हर अन्य अपील का उपशमन अपीलार्थी की मृत्यु पर अंतिम रूप से हो जाएगा।"

8. इस धारा से यह स्पष्ट हो जाता है कि धारा 417 के अधीन किसी अपील का उपशमन केवल अभियुक्त की मृत्यु होने पर ही हो सकता है अन्यथा नहीं। उच्च न्यायालय द्वारा, दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई कोई अपील एक बार ग्रहण कर लिए जाने के पश्चात् उसका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह इस तथ्य के बावजूद भी उसका विनिश्चय करे कि अपीलार्थी या तो अभियोजन नहीं चलाना चाहता है या किसी कारणवश अभियोजन चलाने में असमर्थ है। यह दलील विचार किए जाने योग्य नहीं है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 417 में उपधारा (3) पुरःस्थापित करते समय संसद् ने धारा 431 में अंतर्विष्ट उपबंधों की उपेक्षा कर दी थी। धारा 431 की भाषा स्पष्ट और असंदिग्ध है इसलिए उस उपबंध के निर्वचन का कोई प्रश्न नहीं उठता।

9. इस मामले के गुणागुण के आधार पर निकाले गए अपने निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए हम यह अपील मंजूर करते हैं और उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के निर्णय को अपास्त करते हैं तथा सेशन न्यायाधीश के निर्णय को बहाल रखते हैं। अपीलार्थी जमानत पर हैं। उनके जमानत पत्र रद्द किए जाते हैं।

अपील मंजूर की गई।

ब/क०